भारत में रियासतों का एकीकरणः जम्मू-कश्मीर समस्या के संदर्भ में एक अध्ययन

रागिनी शर्मा सरस्वती
एमफिल, यूजीसी नेट,
(पीएच0डी0-शोधार्थी)
स्कूल ऑफ लॉ एण्ड गवर्नेन्स, दक्षिण बिहार केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गया (बिहार) 824236

साराँश

भारत में जम्मू-कश्मीर की समस्या आजादी के समय से ही चली आ रही है। देशी रियासतों के असहयोग एवं पाकिस्तान के सियासी दाँव-पेंच के कारण यह समस्या ज्यों की त्यों बनी रही। यद्यपि तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री जवाहर लाल नेहरू एवं सरदार बल्लभ भाई पटेल के सराहनीय प्रयास के कारण देश का एकीकरण संभव हो सका। हालाँकि संयुक्त राष्ट्र के हस्तक्षेप से कई विदेशी अधिकारियों ने भी कश्मीर के विलय का प्रयास भारत में किया परन्तु वे सभी नाकाम रहे। क्योंकि इस सम्बन्ध में भारत एवं पाकिस्तान के अपने-अपने तर्क थे। यहाँ तक कि कश्मीर के राजा श्री हरि सिंह जी जनमत-संग्रह कराने तक को तैयार नहीं थे। वे चाहते थे कि स्विटजरलैण्ड की तरह ही जम्मू-कश्मीर भी एक स्वतंत्र राज्य बना रहे। इन्हीं विचारों के चलते अन्ततः सुरक्षा परिषद् के प्रयास से 1 जनवरी 1949 को युद्ध विराम लागू हो गया। परन्तु आजतक संयुक्त राष्ट्र कश्मीर विवाद का कोई समाधान नहीं निकाल सका। आज भी कश्मीर का एक बहुत बड़ा भाग पाकिस्तान के कब्जे में है।

मुख्य बिन्दु- जम्मू-कश्मीर, आजादी, रियासत, संयुक्त राष्ट्रसंघ, भारत-पाकिस्तान, युद्ध, विदेशी अधिकारी

जम्मू-कश्मीर की समस्या

हैदराबाद और जूनागढ़ रियासत के अड़ियल रूख पर सरदार पटेल ने सैनिक शक्ति और दूरदर्शिता से विजय प्राप्त करके इन दोनों को भारत में मिला लिया, परन्तु कश्मीर का मामला पं0 नेहरू ने अपने हाथ मे रखा क्योंकि नेशनल कांफ्रेंस के नेता शेख अब्दुल्ला से उनकी पुरानी मित्रता थी। शेख अब्दुल्ला 1930 में अलीगढ़ विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त कर श्रीनगर में

एक राजकीय हाईस्कूल में अध्यापक के रूप में नियुक्ति पाने के बाद उन्होंने यहाँ से अपनी राजनीतिक गतिविधियाँ प्रारम्भ की। तत्पष्चात कश्मीर में अपना राजनीतिक आधार बनाने हेतु "शेख अब्दुल्ला ने मुस्लिम युवकों को हिन्दु महाराजा हरिसिंह के विरूद्ध भड़काने और संगठित करने का निश्चय किया, और अध्यापन कार्य छोड़कर "कश्मीर नेशनल कांफ्रेंस" का गठन किया, और उसमें एक प्रस्ताव पास कराया कि महाराजा को पदच्युत करके पुनः मुस्लिम सत्ता स्थापित की जाये। इसमें दिये गये भाषणों से सारे प्रदेश का वातावरण अत्यन्त साम्प्रदायिक हो गया। फलतः दंगे भड़क उठे। धीरे-धीरे कश्मीर का सुल्तान बनाना उनके जीवन की सबसे बड़ी आकांक्षा बन गयी। परिणाम स्वरूप अंग्रेजों के इशारे पर कश्मीर में हिंसात्मक उपद्रव आरम्भ कर दिये, और महाराजा को प्रशासनिक सुधार के नाम पर ग्लैंसी आयोग नियुक्त करने पर विवश कर दिये। ग्लैंसी अंग्रेज थे तथा भारत सरकार की गुप्तचर सेना के प्रमुख रह चुके थें। उन्होंने गिलगित को 60 वर्षों के लिए अंग्रेजों के पट्टे पर देने के लिए महाराजा को विवश कर दिया। फलतः शेख एक राजनीतिक हस्ती के रूप में और ब्रिटिश दलाल के रूप में उभरे।

'शेख अब्दुल्ला ने अब अपने चंहरे पर राष्ट्रीय नकाब ओढ़ने का फैसला किया, फलतः वे पं0 नेहरू और अब्दुल गफ्फार खान जैसे प्रभावशाली राष्ट्रीय स्तर के नेताओं के न केवल सम्पर्क में आये बल्कि उन्हें इनका सहयोग मिलना भी शुरू हो गया। तत्पश्चात शेख ने कश्मीर मुस्लिम नेशनल कांफ्रेंस कर दिया। पं0 नेहरू चुंकि कश्मीर के थे, इसलिए व्यक्तिगत मोहवश शेख अब्दुल्ला को "ऑल इंडिया स्टेट पीपुल कॉन्फफ्रेंस" का अध्यक्ष बना दिया जिससे उन्हें राष्ट्रीय मंच पर आने का अवसर मिला।

तत्पश्चात लार्ड माउन्टबेटन की शह पाकर 10 मई, 1946 ई0 को पूरे मजहबी उन्माद के साथ महाराजा के विरूद्ध आंदोलन करा दिया। यह आंदोलन हिन्दू राजा और जम्मू के डोंगरों के विरूद्ध था। पूरा मुस्लिम समाज विद्रोह के रास्ते पर आ गया। फलतः 20 मई को महाराजा ने "शेख को गिरफ्तार करा लिया। इस घटना से नेहरू दुःखी हुए और महाराजा को पत्र लिखकर तुरन्त रिहा करने को कहा। महाराजा ने पं0 नेहरू से निवेदन किया कि "शेख का आचरण भारतीयों के हितों के विरूद्ध है। नेहरू जी सारे प्रतिबन्धों को तोड़कर शेख को छुड़ाने कश्मीर पहुँचे तो उन्हें भी गिरफ्तार

कर लिया गया। इस घटना से पं0 नेहरू जी के मन में महाराज के प्रति शत्रुता के बीज ने जन्म ले लिया। अतः भविष्य की कोख में जन्म लेने वाली कश्मीर समस्या के लिए "शेख की गद्दारी, महाराजा की जिद और नेहरू की अदूरदर्शिता ने भूमिका बना दी। नेहरू का शेख से व्यक्तित्व मोह कश्मीरीपन, उनकी निर्णय क्षमता उनके राष्ट्रीय दृष्टिकोण को ग्रस लिया। फिर भी वे पाकिस्तान में मिलने के पक्ष में नहीं थे। परन्तु हिन्दुस्तान से मिलने के लिए उन्हें अपने राज्य के मुसलमानों का सहयोग एवं समर्थन आवश्यक था। यह उन्हें नेशनल कांफ्रेंस के नेता शेख, महाराजा के कट्टर विरोधी थे। उधर बहुसंख्यक मुस्लिम जनता वाली रियासत को पाकिस्तान अपने में मिलाने के लिए अत्यधिक उत्सुक था। इस असमंजस के स्थिति से महाराजा को उबारने के लिए और सही मार्गदर्शन के लिए लार्ड माउन्टबेटन, विभाजन से दो माह पूर्व 19 जून 1947 को श्रीनगर पहुंचं।

कश्मीर का पाकिस्तान में विलय का सुझाव

स्वतंत्र भारत के प्रथम जनरल लार्ड माउन्टबेटन से किये गये साक्षात्कार पर आधारित पुस्तक- ''माउन्टबेटन एण्ड इंडिपेंडेंट इंडिया'' से यह बात स्पष्ट होती है कि कश्मीर रियासत को सर्वप्रथम पाकिस्तान में मिलाने की सलाह माउन्टबेटन ने महाराजा को दी। जिससे कश्मीर सुरक्षा की दृष्टि से भारत का बहुत नाजुक भू-भाग बन बैठा। महाराजा, माउन्टबेटन को बहुत पहले से जानते थे। जब वे कश्मीर के युवराज थे, उस समय प्रिंस ऑफ वेल्स के स्टॉफ में रहते उनका परिचय माउन्टबेटन से पहले हुआ। अपनी पुरानी मित्रता के आधार पर माउन्टबेटन ने हरिसिंह को पहली सलाह कश्मीर को पाकिस्तान में मिलाने की दी। उन्हीं के शब्दों में--''हरिसिंह मैं आपका पुराना मित्र हूँ। मैं भारत के भावी राज्यों की वर्तमान सरकार के पूरे अधिकार लेकर आया हूँ। इस मामले में पटेल और नेहरू की सहमति है। मैं आपको यह बताने आया हूँ कि यदि आप पाकिस्तान में मिलने का निश्चय करेंगे तो वे इसे एक स्वाभाविक बात समझेंगे, क्योंकि आपके राज्य की अधिकांश आबादी मुसलमानों की है। इसमें कोई दुर्भावना उत्पन्न नहीं होगी अपितु यथासम्भव सहायता करेंगे।''

पाकिस्तान का हमला

इस पर महाराजा ने अपनी इच्छा प्रकट की और माउन्टबेटन से कहा कि-"मैं जम्मू-कश्मीर को भारत तथा पाकिस्तान के बीच स्विट्जरलैण्ड जैसा स्वतंत्र राज्य बनाना चाहता हूँ।" इस पर माउन्टबेटन ने महाराजा को समझाया कि तत्कालीन परिस्थितियों में यह सम्भव नहीं है और यह रियासत कभी स्वतंत्र नहीं रह सकती। कारण, वह चारों तरफ से जमीन से घिरा हुआ है और आकार बड़ा होने पर भी विरल आबादी वाला है। उसके दोनों पड़ोसी एक दूसरे के कट्टर शत्रु है। अतः वह "शीघ्र ही उनके संघर्श का केन्द्र बन जायेगा। आपकी रियासत हिन्दुओं और मुसलमानों की रणस्थली बनेगी और आपको गद्दी से वंचित होना पड़ेगा।"

तीन दिन तक इसी प्रकार ऊहा-पोह और विचार विमर्श चलता रहा। अन्ततः माउन्टबेटन ने जनमत संग्रह कराने का प्रस्ताव भी दिया। परन्तु महाराजा को यह सलाह पसन्द नहीं थी, वे 15 अगस्त, 1947 तक कोई फैसला न ले सके। पाकिस्तान को इससे बड़ी निराशा हुई। इधर माउन्टबेटन दिल्ली लौट आये। अन्ततः पाकिस्तान अपने सीमान्त प्रदेश में कबाइलियों को भड़काकर और पर्याप्त सैन्य सहायता देकर 20 अक्टूबर 1947 को जम्मू-कश्मीर पर आक्रमण कर दिया। आक्रमणकारियों ने सरहद के अनेकों गाँवों एवं कस्बों में लूट-पाट, बलात्कार एवं नरसंहार का तांडव नृत्य उपस्थित कर उन्हें अपने अधिकार में लेकर राजधानी (श्रीनगर) की ओर बढ़ना प्रारम्भ कर दिया। पाकिस्तान के इस प्रबल आक्रमण का मुकाबला महाराजा के सेनापति ब्रिगेडियर राजेन्द्र सिंह ने अपनी सांस तक किया, ब्रिगेडियर "शहीद हो गये परन्तु परिस्थितियों का भयावहता और कबाइलियों को आगे बढ़ने से रोकने में अपनी सेना का असमर्थता को देखकर महाराज हरिसिंह ने भारत सरकार से जम्मू-कश्मीर को आतताइयों से बचाने हेतु बार-बार सैन्य सहायता की अपील की, और इसी बीच 24 अक्टूबर 1947 को पाक सेना के कार्यचारी कमांडर-इन-चीफ जनरल ग्रेसी द्वारा प्राप्त सूचना, जिसमें कबाइलियों द्वारा मुज्जफराबाद पर कब्जा कर लिए जाने की बात कही गई थी, को ध्यान में रखते हुए 25 अक्टूबर को कैबिनेट की प्रतिरक्षा समिति की बैठक बुलाकर स्थिति का मूल्यांकन किया गया और स्थिति का जायजा लेने तथा जम्मू-

कश्मीर के अधिकारियों से बातचीत करने हेतु मेनन को उसी दिन दिया गया।

अगले दिन 26 अक्टूबर 1947 को रियासत के महाजन के साथ दिल्ली लौट आए, और उन्होंने स्थिति तथा सैन्य सहायता की आवश्यकता संबंधी 26 अक्टूबर को प्रतिरक्षा समिति के प्रमुख प्रतिरक्षा समिति की स्पष्ट राय की बिना कश्मीर को भारत से मिलने हेतु विलय प्रपत्र पर हस्ताक्षर लेना उचित नहीं हसेगा और तदोपरान्त 26 अक्टूबर को हुई केन्द्रीय मंत्रिपरिषद की विशेष बैठक के बाद महाजल के साथ पुनः उसी दिन भारत से महाराज को अवगत कराने हेतु दिशा निर्देश भेजा गया।

तत्पश्चात मेनन और महाराज की बैठक के बाद उसी दिन सायं भरत के पक्ष मे हस्ताक्षरित कर माउन्टबेटन को स्पष्ट शब्दों में लिखा कि-इस समय जो स्थिति है मेरे पास भारत, स्वतंत्र राज्य मांगने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। जब तक अपने राज्य का विलय नहीं हो जाता हम महाराजा हरिसिंह द्वारा मांगी गयी सैन्य सहायता नहीं देने का निर्णय लिया है। इसी बीच माउन्टबेटन ने लाहौर पहुंचकर जिन्ना से निष्पक्ष चुनाव कराने का आग्रह किया। दिसम्बर, 1947 में प्रत्यक्ष रूप से नियमित पाकिस्तानी सेना खुलकर युद्ध में भाग लेने लगी। फलतः 1948 में युद्ध गम्भीर रूप ले बैठा। अतः दो डिवीजन भारतीय सैन्य कश्मीर मोर्चे पर उतारे गये। साथ ही के0 एम0 करियप्पा का पश्चिमी कमाण्ड का जनरल ऑफिसर कमाण्डिंग इन चीफ नियुक्त किया गया, जिसने कश्मीर युद्ध से निपटने हेतु दो पृथक डिवीजनों को संगठित किया। श्रीनगर डिवीजन मेजर जनरल के0एस0 थिमैया और जम्मू डिवीजन को मेजर जनरल आत्मसिंह के नेतृत्व में सौंपा गया। इस प्रकार यह युद्ध, युद्ध विराम होने तक अनवरत् चलता रहा।

जनमत संग्रह का प्रस्ताव

युद्ध की भयंकरता को देखकर लार्ड माउन्टबेटन कश्मीर समस्या के समाधान हेतु जिन्ना और नेहरू को समझा-बुझाकर इस मामले को संयुक्त राष्ट्र के सुरक्षा परिषद में ले जाने के लिए राजी किया। जनवरी 1948 को भारत ने अनौपचारिक रूप से संयुक्त राष्ट्र के सुरक्षा परिषद के सम्मुख इस

मामले को प्रस्तुत किया। जिस पर 21 अप्रैल, 1948 को एक बैठक हुई जिसमें यह निर्णय किया गया कि 5 सदस्यों का एक आयोग बनाया जाये जो कश्मीर युद्ध को बन्द कराकर जनमत संग्रह कराने की व्यवस्था करे कि कश्मीर भारत में विलय होना चाहता है कि पाकिस्तान में। अन्ततः सुरक्षा परिषद् के प्रयास से 1 जनवरी 1949 को को युद्ध विराम लागू हो गया। परन्तु आज तक संयुक्त राष्ट्र कश्मीर विवाद का कोई समाधान नहीं निकाल सका। आज भी कश्मीर का एक बहुत बड़ा भाग पाकिस्तान के कब्जे में है।

वैसे गत तीन दशकों से भारत अपनी सुरक्षा समस्याओं के निराकरण के लिए जूझता रहा है। उसकी घरेलू तथा विदेश नीति का प्रमुख लक्ष्य रक्षा को खतरा उत्पन्न करने वाले तत्वों का सामना करने की ओर उन्मुख रहा है। यद्यपि विश्व बंधुत्व एवं भ्रातृ नीति का अनुसरण करने के बाद भारत अपने पड़ोसियों की धार्मिक कट्टरता एवं विस्तार की नीति के कारण स्वाधीनता प्राप्ति के बाद घृणास्पद एवं विनाशक युद्धों से न बच सका। एक ओर यदि घर के चिराग पाकिस्तान ने ही घर में आग लगाने का सतत् प्रयास किया, जिसके कारण कश्मीर युद्ध 1947-48, भारत-पाक युद्ध 1965, 1971 का सामना करना पड़ा, तो वही दूसरी ओर चीन ने भी भारतीय विश्वास को तोड़ने (1962) में कोई कसर नहीं उठा रखी। फलतः भारत को अपनी स्वाधीनता के बाद के 60 वर्शों में 4 युद्ध लड़ने पड़े।

सुरक्षा परिषद के द्वारा 17 जनवरी 1949 ई0 को एक प्रस्ताव पारित कर दोनों पक्षों (भारत और पाक) में संयम बनाये रखने का अनुरोध किया गया था तथा पुनः 20 जनवरी 1948 ई0 को अपने एक अन्य प्रस्ताव में सुरक्षा परिषद ने एक पाँच-सदस्यों की मध्यस्थता समिति की स्थापना की जिसे (United National Commission on India and Pakistan UNCIP) के नाम से जाना जाता है। UNCIP द्वारा 13 अगस्त 1948 और 5 अगस्त 1949 को दिये अपने प्रस्ताव को, जिसे कश्मीर समस्या को हल करने की एक बुनियाद माना जा रहा था, इसको लागू करने के लिए कोई ठोस कदम नहीं उठाया गया। इन प्रस्ताव पर आधारित केवल युद्ध विराम 1 जनवरी 1949 को लागू कर दिया गया तथा 22 मार्च 1949 ई0 को संयुक्त राष्ट्र ने अमेरिका के एडमिरल सी0 डब्ल्यू निमिट्ज को Plenscite Administrator (जनमत संगह प्रशासक) नियुक्त किया था।

UNCIP जब दोनों राष्ट्रों के बीच किसी समझौते के निकट नहीं पहुँची तथा कश्मीर के लिए किये गये निर्णय लागू करने में असमर्थ रही तो उसने मध्यस्थता का रास्ता अपनाने का निर्णय लिया, जिसे अमेरिका के राष्ट्रपति ट्रूमैन तथा ब्रिटिश प्रधानमंत्री एटली के द्वारा पाकिस्तान को समर्थन मिला, किन्तु भारत इस मध्यस्थता निर्णय के प्रस्ताव को मानने से इंकार कर दिया। भारत के इस निर्णय को ध्यान में रखते हुए कमीशन ने महसूस कि यदि किसी एक व्यक्ति को काम सौंपा जाय तो "शायद कोई निर्णय हो सकता है। अतः सुरक्षा परिषद ने अपने ही अध्यक्ष जो कि कनाडा के जनरल मैकनोटन थे, को यह कार्य सौंपा।

उन्होंने अपने एक प्रस्ताव में दोनों पक्षों को अपनी-अपनी सेनाओं को नियंत्रण रेखा से पीछे हटने को कहा जिस पर भारत ने अपनी असहमति व्यक्त की। इसके पश्चात सुरक्षा परिषद ने अपने एक चैंकाने वाले निर्णय के तहत 14 मार्च 1950 को UNCIP को समाप्त कर दिया और अपना एक प्रतिनिधि नियुक्त कर दिया। सर्वप्रथम संयक्त राष्ट्र प्रतिनिधि के रूप में आस्ट्रेलिया हाई कोर्ट के एक न्यायाधीश सर ओवन डिक्शन को कश्मीर मसले का हल निकालने के लिए नियुक्त किया। उनके सामने सबसे बड़ी चुनौती थी कि वे दोनों सेनाओं को नियंत्रण रेखा से हटने में कैसे सफल हों।

27 मार्च 1950 को भारत पहुँचने के साथ ही उन्होंने अपना कार्य प्रारम्भ किया। वह भारत से इस बात से सहमत नहीं थे, कि पाकिस्तान को आक्रमणकारी घोषित करके उसके विरूद्ध कार्यवाही की जाए। वे चाहते थे कि दोनों देश अपनी-अपनी सेनाओं को वापस बुला ले, जिससे कश्मीर की राजनीतिक स्थिति सामान्य हो जाए और जल्द से जल्द जनमत संग्रह कराया जा सके। उनका मानना था कि कश्मीर की जनता को यह अधिकार है कि वह यह तय करे कि उन्हें किस देश के साथ रहना है परन्तु डिक्शन अपने अभियान में कामयाब न हो सके। और वे न ही भारत या न ही पाकिस्तान को समझाने में सफल हुए कि वे अपनी सेनाओं को नियंत्रण रेखा से दूर बुला ले।

डिक्शन मिशन के नाकामयाब हो जाने के पश्चात् कॉमनवेल्थ देशों के प्रधानमंत्रियों द्वारा समस्या का हल निकालने का एक प्रयास किया गया। 4 जनवरी 1951 को संघ की होने वाली बैठक में भारत और पाकिस्तान को

समस्या का हल निकालने के लिए कहा गया। इस संघ ने अपने प्रस्ताव में तीन विकल्प रखे-

1. कॉमनवेल्थ देशों की सेनाओं की देख-रेख में।

2. भारत-पाकिस्तान की संयुक्त सेनाओं के तत्वाधान में।

3. संयुक्त राष्ट्र के नेतृत्व वाली सेना के तत्वाधान में जनमत संग्रह कराया जाये।

पाकिस्तान तीनों विकल्प के लिए तैयार था, लेकिन भारत इन तीनों विकल्पों पर तैयार न हुआ। कॉमनवेल्थ की बैठक मे जब कुछ न हो सका तो संयुक्त राष्ट्र ने दुबारा बहस प्रारम्भ की और अपने 20 मार्च 1951 के एक प्रस्ताव में ग्राहम, जो कि अमरीका के पूर्व सीनेटर थे को अपना नया प्रतिनिधि चुना। ग्राहम ने अपने कार्यकाल में 6 रिपोर्ट 15 अक्टूबर 1951, 19 दिसम्बर 1951, 22 अप्रैल 1952, 19 सितम्बर 1952, 27 मार्च 1953 एवं 31 मार्च 1953 को संयुक्त राष्ट्र को सौंपा। परन्तु भारत ने उनके अनेक प्रस्तावों पर अपना विरोध जताते हुए अस्वीकार कर दिया। भारत का कहना था कि पहले पाकिस्तान को आक्रामक कार्यवाही का दोशी माना जाये तथा उसे कश्मीर के अंदर अपनी दखलंदाजी बन्द करने को कहा जाये। भारत इसे हमेशा से भारत व पाकिस्तान के मध्य का मसला मानता रहा और इसे आपसी बातचीत के द्वारा ही हल करने को इच्छुक रहा हैं। यहाँ पर यह तथ्य उल्लेखनीय है कि पं0 नेहरू द्वारा इस मसले को संयुक्त राष्ट्र में ले जाने के पूर्व 1947-1948 में जम्मू-कश्मीर में सैन्य अभियान का नेतृत्व कर रहे सैन्य कमाण्डरों ने नेहरू को यह सुझाव दिया था कि जम्मू और कश्मीर से पाकिस्तानी सैनिकों, घुसपैठियों को निकालने में सिर्फ चन्द सप्ताह लगेंगे। परन्तु पं0 नेहरू ने इन सलाहों पर ध्यान नहीं दिया और विवाद के "शांतिपूर्ण निपटारे हेतु संयुक्त राष्ट्र गये। किंतु संयुक्त राष्ट्र 1948 से कश्मीर मुद्दे पर जिस तरह पेश आया है, वह भारत के लिए बहुत अप्रसन्नता का विशय रहा है। भारत में जम्मू-कश्मीर के संवैधानिक एवं विघि सम्मत विलय के आधार पर कोई कार्यवाही करने के बजाय और पाकिस्तान के हिंसक गतिविधियां बंद करने को कहने की बजाय संयुक्त राष्ट्र ने इन वर्षों में भारत के एक भाग

जम्मू और कश्मीर में पाकिस्तानी आक्रमण के मुद्दे को भारत-पाक विवाद में बदल दिया।

भारत द्वारा कश्मीर राज्य के विलय को स्वीकार कर लेने के उपरान्त पाकिस्तान इस विलय को अस्वीकार करते हुए विलय तथा कुछ अन्य विषयों पर प्रश्न खड़ा करता रहा है तथा निम्न तर्कों का सहारा लेता है। अतः आगे बढ़ने से पूर्व यह आवश्यक है कि उन तर्कों का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया जाये।

1. कश्मीर का भारत में विलय, भारत द्वारा प्रयोग की गयी “शक्ति और भय प्रदर्शन का परिणाम था।

2. कश्मीर विजय जनमत-संग्रह पर आधारित था जिसे पूरा किये बिना कश्मीर स्थायी रूप से भारतीय संघ का अंग नहीं माना जा सकता।

3. मुस्लिम बाहुल्य देश होने के कारण कश्मीर का विलय पाकिस्तान में होना चाहिए।

4. कश्मीर में जनमत-संग्रह के प्रश्न पर निर्णय करने में भारत-पाकिस्तान दोनों को बराबरी का अधिकार मिलना चाहिए।

5. महाराजा हरिसिंह ने जनइच्छा के विरूद्ध विलय करना स्वीकार किया था, जो अवैध है।

उपरोक्त तर्कों के जवाब में भारत ने निम्न तर्क दिये है-

1. कश्मीर के महाराजा ने कश्मीर के विलय का प्रस्ताव भारत की “शक्ति के भय से नहीं वरन, इस डर से किया कि पाकिस्तानी उसकी रियासत को हड़पना चाहते थे, और रियासत की रक्षा केवल भारत ही कर सकता था। राज्य प्रमुख के हस्ताक्षर एवं गवर्नर जनरल की स्वीकृति के उपरान्त ही कश्मीर का विलय किया गया। अतः भारतीय संघ में कश्मीर का विलय पूर्णतः वैधानिक था।

2. कश्मीर विलय 1947 के भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम में उल्लेखित प्रवेश पत्रिका के अनुरूप पूर्णतः वैधानिक था।

3. कश्मीर की जनता ने स्वतंत्र रूप से निर्वाचित अपनी संविधान सभा के माध्यम से कश्मीर को भारतीय संघ का अभिन्न अंग घोषित कर दिया था। अतः जनमत संग्रह की बात स्वतः ही पूर्ण हो गयी।

4. आत्मनिर्णय एक लोकतांत्रिक प्रश्न है, जिसका प्रयोग राज्यों को टुकड़े में बांटने के लिए नहीं किया जाता है। पाकिस्तान ने जिन राज्यों का विलय किया उन्हें कभी आत्मनिर्णय का अधिकार नहीं दिया।

5. पाकिस्तान जैसा आक्रमणकारी राष्ट्र विलय की बात करने का कोई अधिकार नहीं रखता।

6. कश्मीर के जिस भू-भाग पर उसने ताकत के बल पर अधिकार किया, उसका एक बड़ा हिस्सा चीन को अवैध रूप से सौंप दिया।

7. भारत ने जनमत-संग्रह का आश्वासन कश्मीर के "शासक को दिया था, पाकिस्तान को नहीं। जनमत-संग्रह पाकिस्तान द्वारा कश्मीर से उसकी सेनाएं हटाने पर सम्भव था, किन्तु उसकी फौजों की लगातार उपस्थिति इसमें बाधा बनी रही। कश्मीर में लगातार हो रहे स्वतंत्र चुनाव के बाद, जनमत-संग्रह का प्रश्न ही खत्म हो गया।

8. मुस्लिम बहुमत के आधार पर जनमत संग्रह की बात गलत है, क्योंकि भारत जिन्ना के द्विराष्ट्र सिद्धान्त को मान्यता नहीं देता। पाकिस्तानी दुराग्रह स्वीकार करने का अर्थ सारे देश और कश्मीर की शांति को भंग करना था, भारत में कश्मीर विलय के कश्मीरी जनता के निर्णय का स्पष्ट अपमान करना था।

इन्हीं तर्कों-वितर्कों के मध्य आगामी वर्षों में भी भारत और पाकिस्तान के मध्य तनाव बरकरार रहा और इस समयावधि में संयुक्त राष्ट्र द्वारा कोई ठोस कार्यवाही या विचार विमर्श नहीं किया गया। भारत एवं चीन के मध्य बढ़ते तनाव के फलस्वरूप भारत द्वारा इस समस्या के संदर्भ में प्रगति शून्य रही। भारत-चीन युद्ध 1962 के समय भारतीय चिन्ताएं पाक को लेकर अधिक रहीं क्योंकि पाक चीन की आड़ में कश्मीर पर ऐसी कोई कार्रवाही कर सकता था, जिसका दुष्प्रभाव भारतीय सुरक्षा और कश्मीर समस्या को और अधिक पेंचीदा बना देता।

सन्दर्भ सूची-

1. उर्मिलेश- कश्मीरः ए स्टडी इन इण्डिया पाकिस्तान रिलेशन, एशिया पब्लिकेशन हाउस न्यूयार्क, 1966, पृ0-227
2. एम0 सी. चगला- कश्मीर 1947-65, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया प्रेस दिल्ली, पृ0-20
3. क्रम संख्या-2, पृ0-75
4. क्रम संख्या-1, पृ0-459
5. क्रम संख्या-5, पृ0-128
6. के0 के0 मिश्रा- कश्मीर एण्ड इण्डियास फॉरेन पॉलिसी, युग पब्लिकेशन, दिल्ली, पृ0-48
7. गणेश माथुर- संविधान के अनुच्छेद 370 और कश्मीर, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992, पृ0-38
8. जे0 एन0 दीक्षित- भारतीय पाक संबंध, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली-2003, पृ-121
9. जे0 एन0 दीक्षित- भारतीय विदेश नीति, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, 2003, पृ0-73
10. जोसेफ कारवेल- डेंजर इन कश्मीर, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू जरसी, 1954, पृ0-85
11. डॉ0 राजबाला सिंह- भारत का विदेश नीति, आविष्कार प्रकाशन जयपुर, 2005, पृ0-181
12. डी0 सी0 चतुर्वेदी- अन्तर्राष्ट्रीय संबंध, 1987-88, पृ0-512
13. दैनिक जागरण, कानपुर, 25 जून 2000 ई0, पृ0-121
14. प्रो0 लल्लन जी सिंह- राष्ट्रीय रक्षा और सुरक्षा, प्रकाश बुक डिपो बरेली, 2006, पृ0-640
15. विरेन्दर ग्रोवर- पार्टिशन, आफ इण्डिया, इण्डो-पाक, वार द यू0एन0ओ0 दीप एण्ड दीप, पृ0-164
16. हिन्दुस्तान 18 जनवरी, 2001